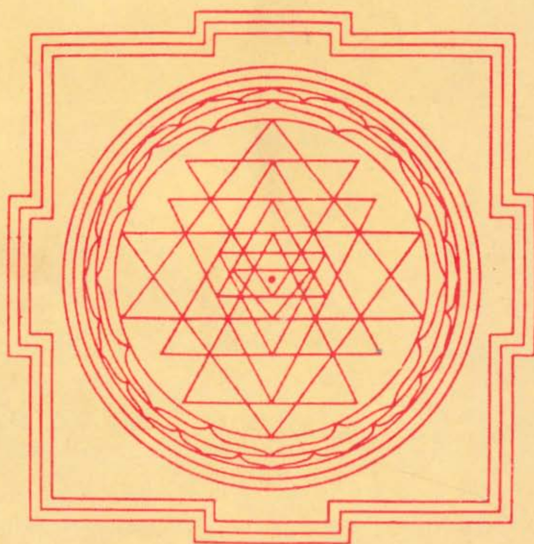
श्रीविद्या एवं श्रीयन्त्र एक परिचय

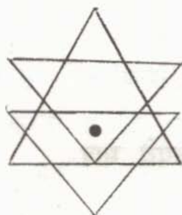


श्रीविद्या साधना पीठ

वाराणसी

श्रीविद्या एवं श्रीयन्त्र एक परिचय

प्रणेता
दत्तात्रेयानन्दनाथ



श्रीविद्या साधना पीठ
वाराणसी

प्रकाशक—
श्रीविद्या साधना पीठ
नगवा, वाराणसी-२२१०१०

जनवरी–२००१

सहयोग राशि : दस रूपये मात्र

मुद्रक—
तारा प्रिंटिंग वर्क्स
वाराणसी

श्री-स्मरणम्

सुख सभी को चाहिए, जो कुछ प्रपञ्च किये जाते हैं उन सभी के मूल में सुख प्राप्ति की कामना रहती है। सुख दो प्रकार है—कृत्रिम (बनावटी) और अकृत्रिम (सच्चा)।

कृत्रिम सुख, काम एवं भोग है एवं अकृत्रिम सुख मोक्ष है। काम-भोग के लिए अर्थ आवश्यक है। और अर्थ प्राप्ति के लिए धर्म आवश्यक है। अत: धर्म से ही अर्थ-काम की प्राप्ति होगी, तब मोक्ष प्राप्त होगा, इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं। इनसे अकृत्रिम सुख यानि सच्चा सुख प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृति की यही मूल विचारधारा है। इसी विचारधारा के अनुसार जीवनचर्या बनाने से सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।

महर्षि व्यास ने कहा है—**'धर्मा दर्सश्च कामश्चः'**। मैं हाथ ऊपर उठाकर घोषणा करता हूँ कि धर्म से ही अर्थ और अर्थ से ही काम की प्राप्ति होगी। अत: धर्म का ही सेवन करना चाहिए। पाश्चात्य संस्कृति में अर्थ और काम को प्राथमिकता दी गई है। वे कर्म से अर्थ प्राप्त करते हैं एवं काम की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार यह कृत्रिम सुख है। इसे 'भोगवाद' कहते हैं। आज इस भोगवाद की विकराल दावानल में पूरी पाश्चात्य संस्कृति चपेट में आ गई हैं। वहाँ के लोग इस भोगवाद से उद्धार के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। इस के लिए भारत की ओर इनकी दृष्टि है।

पाश्चात्य दार्शनिक, विद्वान् भारत में आकर प्रयास कर रहे हैं कि भोगवाद से छुटकारा पाने के लिये यहाँ से कुछ मिल सकता है। इस नारकीय जीवन से हम मुक्ति पा सकते हैं। अत: अकृत्रिम सुख सच्चे सुख की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए।

वर्तमान में कुछ बुद्धिजीवी कहे जाने वाले भारतीय भी उसी भोगवाद की ओर अग्रसर हो रहे हैं। पाश्चात्य देशों की नकल करने में वे महत्त्व की अनुभूति करते हैं। यदि ऐसा ही होता रहा तो इसका अन्तिम परिणाम वही होगा जो आज पाश्चात्य देशों का हो रहा है। अत: सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए भारतीय संस्कृति की मूल विचारधारा से जुड़ना होगा।

भारतीय संस्कृति के विचारधारा के प्रवर्तक **महर्षि व्यास** के अनुसार चारों पुरुषार्थों का मूल 'धर्म' ही है। अत: धर्म के स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है। भारतीय दार्शनिक मीमांसा के अनुसार 'ब्रह्म ज्ञान' सर्वोपरि है। इसकी प्राप्ति का साधन धर्म है। उत्तर मीमांसा में 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' वर्णित है तथा पूर्व मीमांसा में—'अथातो-धर्म जिज्ञसा' वर्णित है। धर्म के लिए धर्माचरण आवश्यक है। धर्माचरण के लिये तंत्रशास्त्रों में कहा गया है—'अथातो दीक्षां व्याख्यामस्थाम:' अर्थात् धर्माचरण करने के अधिकारी बनो। भारतीय आचार्य परम्परा में वेद एवं तंत्र दोनों प्रमाण-भूत हैं।

श्रीविद्या साधना वेद और वेदान्त में सूत्र रूप से वर्णित है और तंत्रों में इसकी साधना का विस्तृत विवरण है एवं

क्रियात्मक रूप से इसके अनुष्ठान का विधि विधान भी प्राप्त है। इसमें तंत्रोक्त क्रियाकलाप होने से **श्रीविद्या** कहते है। यह 'ब्रह्म-विद्या' का ही नामान्तर है।

क्या है श्रीविद्या? इस प्रश्नवाचक वाक्य का उत्तर इस छोटी सी पुस्तक में शास्त्रीय रूप में लिखा गया है। यदि संक्षेप में इसका उत्तर दिया जाये तो भगवान् कृष्ण के एक वाक्य में इसका उत्तर हो जाता है। वह वाक्य है—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।।

(श्रीमद्भगवतगीता ९।२)

यह विद्याओं की राजा है, 'राजृ दीप्तौ' इस धातु से राज शब्द बनता है इसलिए राज शब्द का अर्थ होता है अतिशय दीप्ति। यह विद्या अतिशय प्रकाशयुक्त देदीप्यमान है।

राजगुह्यम्—गुप्त रखने योग्य भावों की राजा है माने अति गोपनीय है तथा उत्तम पवित्र है, अर्थात् अनेक जन्मों के संचित कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं। उत्तम पवित्र का यह अर्थ शांकरभाष्य में किया गया है। **प्रत्यक्षावगमम्**—अर्थात् प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। जैसे सुख-दुःख की अनुभूति होने उसी प्रकार इस साधना से साधनजन्य अनुभूतियाँ होती हैं। प्रत्यक्ष अनुभूति होने से शंका होती है कि आत्म-ज्ञान के लिए ये विरोधी हो सकती हैं, क्योंकि आत्मज्ञान अपरोक्ष है। इसलिए **धर्म्यं** कहा गया है। अतः यह धर्म विरोधी नहीं है एवं आत्मज्ञान में बाधक नहीं है, धर्मयुक्त है।

'सुसुखम् कर्तुम्' सुखपूर्वक साधना की जा सकती है। अल्प प्रयास से ही सुखपूर्वक साधना की जा सकती है, तब यह शंका उठती है कि सुख सम्पाद्य कार्य का अल्प फल होता है तथा कठोर कष्ट से सम्पादित कार्य का महाफल होता है। अत: सुख से सम्पादित कार्य का फल अल्प एवं क्षयात्मक हो जाता है। इसलिये **अव्ययम्** कहा है। इसका फल कभी क्षीण नहीं होता। इस प्रकरण पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि ये कही गई राज-विद्या 'श्रीविद्या' ही है, क्योंकि गोपनीयता तंत्रों में है। साधना की अनुभूति भी तान्त्रिकी साधनाओं में होती है और दीक्षा द्वारा जन्म-जन्मान्तर का पाप नष्ट हो जाता है। श्रीविद्या की साधना सुखपूर्वक होती है। इसलिए इन वाक्यों पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि गीताप्रोक्त **राज-विद्या**, **श्रीविद्या** ही है।

स्वविमर्श: पुरुषार्थ:—मैं कौन हूँ? यह जान लेना ही परम पुरुषार्थ है। मानव अनेक विद्याओं का अध्ययन करता है, अनेक भाषाओं का विज्ञ होता है। कवि, लेखक, वक्ता व शास्त्रार्थ महारथी भी हो जाता है। परन्तु यह ज्ञान नहीं होता कि मैं कौन हूँ? यह समझ लेना ही परम पुरुषार्थ है। **'सर्व खल्विधं ब्रह्म'** एवं **'जीवो ब्रह्मैव नापर:'** के अनुसार तंत्रों की भी मान्यता है कि जीव ही शिव है और शिवत्व प्राप्ति के लिए ही श्रीविद्या साधना है। इसमें 'शिवोऽहं' की भावना ही चरम लक्ष्य है।

अत: इसमें स्वरूप ज्ञान ही लक्ष्य है और जीवनमुक्ति ही मोक्ष प्राप्ति है। अर्थात् अहन्ता, ममता, राग-द्वेष आदि मानव

स्वभाव जन्य दोषों से रहित होना, अनासक्त भाव से समस्त सांसारिक व्यवहारों का आचरण करना ही जीवन मुक्तावस्था है। अत: इसमें जीवनमुक्ति परमलक्ष्य है। यह **ब्रह्मविद्या** है। यह **'अद्वैत मत'** विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत है।

तंत्रों में दो अवस्थायें है—जीवनमुक्त और जीवनमृत। भारतीय संस्कृति विश्व को एक कुटुम्ब का रूप मानती है; इस कुटुम्ब से अलग होकर अपना अस्तित्व स्थापित करना एवं अपने लिये ही सब कुछ करना स्वार्थपरायण होना, यही जीवनमृत अवस्था है। स्व-पर भेद रहित सामरस्य भाव से विश्वहित चिन्तन करना **'बसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना समष्टि से जुड़ना है। इदन्ता में अहन्ता का तात्पर्य है, व्यष्टि को समष्टि में मिलाना। **अहन्ता** में **इदन्ता** के समावेश से **पूर्णाहन्ता** होती है। यही जीवनमुक्त अवस्था है। यही विश्व बन्धुत्व की भावना स्रोत है।

श्रीविद्या साधना शाक्त दर्शन के शाक्ताद्वैत मत पर आधारित है। भेद रूपी अज्ञान को दूर करके अभेद ज्ञान ही इसका चरम लक्ष्य है। इस साधना के आदि-मध्य एवं अवसान में विश्व बन्धुत्व की भावना ओत-प्रोत है। यह भारतीय संस्कृति की मूल विचारधारा का संरक्षण करती है।

इस पुस्तिका के लेखन में मुख्य स्रोत तारा प्रेस के संचालक श्रीरमाशंकर जी पण्ड्या हैं। इनकी इच्छा थी कि श्रीविद्या क्या है? यह जानकारी होना आवश्यक है, क्योंकि दक्षिण-भारत में तो यह साधना-परम्परा चल रही है परन्तु उत्तर-भारत में कई

कारणों से इसकी परम्परा लुप्त प्राय: हो गई है। इधर कुछ प्रबुद्ध वर्ग का इस ओर झुकाव हो रहा है। अत: इसके शास्त्रीय स्वरूप का ज्ञान होना आवश्यक है। यह बात उनकी मुझे भी ठीक लगी और इसे महाकुम्भ पर्व पर ही प्रकाशन का निश्चय किया गया। श्री पण्ड्या जी ने इसके प्रकाशन में श्रीधनीय प्रयास किया, श्रीविद्या अधिष्ठात्री की भगवती ललिता महात्रिपुरसुन्दरी के कृपाभाजन है। इनको मैं हृदय से साधुवाद देता हूँ। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की शोध-छात्रा साधिका ममता ने प्रेस कापी एवं प्रूफ संशोधन में प्रशंसनीय प्रयास किया है, अत: इसे भी साधुवाद देना आवश्यक है। अगले मुद्रण में मैं समाधान करने का प्रयास करूँगा। शेष में इष्टदेवस्वरूप श्रीगुरु चरणों में यह शब्दाञ्जलि समर्पित है।

दत्तात्रेयानन्दनाथ

।।श्री।।

श्रीविद्या एवं श्रीयन्त्र

वन्दे गुरुपद द्वन्द्वमवाङ्मनसगोचरम्।
रक्त शुक्ल प्रभामिश्रमतर्क्य त्रैपुरं महः ।।

श्रीविद्या साधना आध्यात्मिक एवं दार्शनिक शास्त्रों का पुञ्जीभूत रहस्य है. इसके स्वरूप का ज्ञान इककी साधना से ही प्रकट होता है। इस विषय पर कुछ लिखने की प्रेरणा हुई, गुरु कृपा से जो कुछ भी ज्ञान हुआ है, उसे गोपनीय होने पर भी लोक कल्याण के लिए लिखने का प्रयास किया है।

कुछ प्रबुद्ध वर्ग को श्रीविद्या साधना की **विविदीषा** (जानने की इच्छा) उत्पन्न हुई है। अत: इस साधना के शास्त्रीय स्वरूप का दिग्दर्शन करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

तन्त्र शास्त्रों का मूलभूत सिद्धान्त है—**इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति** और **क्रियाशक्ति**। सर्वप्रथम इच्छा होती है कि मुझे यह चाहिए या यह करना है, इसलिए इसे **इच्छाशक्ति** कहते हैं। पुन: इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए जानकारी की जाती है, उसे **ज्ञानशक्ति** कहते हैं। इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयास करना **क्रियाशक्ति** है।

वर्तमान में **श्रीविद्या** एवं **श्रीयन्त्र** के विषय में लोगों की यह धारणा बनती जा रही है, कि **श्री** का अर्थ है लक्ष्मी, तो यह लक्ष्मी प्राप्ति की विद्या है, एवं **श्रीयन्त्र** का अर्थ है—लक्ष्मी प्राप्ति का साधन।

श्रीविद्या और श्रीयन्त्र के साथ श्री शब्द जुड़ा है, अतः इस अर्थ युग में इसके प्रति उत्सुकता होनी स्वाभाविक है। लेकिन सिर्फ धन प्राप्ति के लिए ही इसकी साधना करना, चक्रवर्ती सम्राट् से धान का तुष माँगने के समान है।

श्रीविद्या साधना को भारतीय आध्यात्मिक वाङ्मय में **ब्रह्मविद्या** का स्वरूप माना गया है। यह शाक्तदर्शन की रहस्यात्मक विद्या है। अतः इसके शास्त्रीय रूप को जानने के लिए कुछ भूमिका आवश्यक है।

मानव स्वभाव से ही चिन्तनशील प्राणी है। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण उसे बौद्धिकता की प्रथम अनुभूति में ही सृष्टि एवं इससे जुड़े तथ्यों के विषय में सहज ही विविध जिज्ञासायें उत्पन्न होती हैं, इन सभी जिज्ञासाओं का विलय तत्त्वज्ञान में उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार अनेक नदियाँ जाकर समुद्र में मिल जाती हैं।

सामान्य व्यक्ति प्रकृति से सम्बन्धित तथ्यों को प्राकृतिक मानकर सहज ही स्वीकार कर लेता है, मात्र प्रबुद्ध व्यक्ति को ही तत्त्व जिज्ञासा होती है। वह जानना चाहता है क्रि यह दृश्यमान जगत क्या है? इस जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई? मैं कौन हूँ?

कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाऊगाँ? आदि प्रश्नों का द्वन्द्व उसके मन में उत्पन्न होता है।

इन प्रश्नों का समाधान हमारे शास्त्रों में निहित है। वेद शास्त्रों के तत्त्ववेता ऋषि-मुनि, महा-मेधावी चिन्तकों ने विशद रूप से व्याख्या करके संभावित सभी जिज्ञासाओं का पूर्ण रूप से प्रतिपादन करके संभावित सभी जिज्ञासाओं का पूर्ण रूप से युक्तिसंगत समाधान करने का प्रयास किया है। इन प्रश्नों के तार्किक एवं युक्तिसंगत समाधान में 'तंत्र' या 'आगम' की भी मुख्य भूमिका रही है।

श्रीविद्या साधना के वेद, पुराण, उपनिषदों में संकेत प्राप्त होते हैं। परन्तु तंत्रशास्त्रों में इस साधना का विशद विवेचन एवं विस्तृत विधि विधानों का उल्लेख उपलब्ध है। अत: तंत्र शास्त्रों के स्वरूप पर आलोचना आवश्यक है।

तंत्रों की प्रामाणिकता

तंत्र शब्द को लेकर भारतीय दर्शन एवं धर्म में अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई हैं। इसका मुख्य कारण है तन्त्र के रहस्य को न जानना। तंत्र का अर्थ है वह शास्त्र जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाये एवँ जो त्राण प्राप्ति में सहायक हो। वस्तुत: तंत्र में धर्म के साथ अर्थ और काम आदि मूल्यों का समन्वय करने का प्रयास किया गया है। धर्म पारलौकिक सुख को महत्व देता है। यज्ञानुष्ठान आदि पारलौकिक सुख के निमित्त किये जाते हैं, जबकि तंत्र इहलौकिक सुख को प्राथमिकता देता है। धार्मिक

व्यक्ति अपना सम्पूर्ण जीवन पारलौकिक सुखों की कामना करने एवं उसी के निमित्त अपने कर्मों का संचय करने में व्यतीत करता है, जबकि तंत्र का समर्थक स्वयं में देवत्व की अनुभूति करता हुआ इस पृथ्वी को स्वर्ग सदृश्य समझते हुए अपना बहुमूल्य जीवन व्यतीत करता है। तंत्र वेद का पूरक है। जो बात वेदों में सूक्ष्म रूप से कही गयी है। तंत्र उसे ही पूर्णरूप से प्रकाशित करता है। तंत्र का दूसरा नाम 'आगम' है। जिसमें भोग एवं मोक्ष दोनों समाहित है। वैदिक ग्रन्थों में वर्णित ज्ञान का क्रियात्मक रूप तंत्र का मुख्य विषय है। वृहदारण्यक आदि उपनिषदों में जो सूत्र मात्र सैद्धान्तिक रूप में वर्णित है, तंत्रों में इसे ही क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। कर्म, उपासना और ज्ञान के स्वरूप को **'निगम'** कहते हैं तथा इनके साधन भूत उपायों को **'आगम'** या **'तंत्र'** कहते हैं।

तन्त्रों का स्वरूप

अब प्रश्न उठता है कि तंत्र क्या हैं? इसका व्याख्यान इस प्रकार है—सांसारिक सकल कामनाओं के साधक चतुःषष्टि तंत्रों का प्रतिपादन कर देने के बाद पराम्बा भगवती पार्वती ने भूतभावन विश्वनाथ से पूछा—भगवन्! इन तंत्रों की साधना से जीव के आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीन-हीनता आदि क्लेश तो दूर हो जाएगें, किन्तु गर्भवास और मरण के असह्य दुःखों की निवृत्ति तो इससे नहीं होगी। कृपया इस दुःख की निवृत्ति एवं मोक्षरूप परमपद की प्राप्ति का कोई उपाय बतायें।

परिमामस्वरूप परम कल्याणमयी पुत्रवत्सला पराम्बा के साग्रह अनुरोध पर भगवान् शंकर ने इस **श्रीविद्या साधना** प्रणाली का प्राकट्य किया। इसी प्रसंग को आचार्य शंकर भगवत्पाद **'सौन्दर्य लहरी'** में प्रकट करते हुए कहते हैं—पशुपतिभगवान् शंकर सिद्धिप्रद चौंसठ तंत्रों के द्वारा साधकों की जो स्वाभिमत सिद्धि है; उन सबका वर्णन करके विरत हो गये। पुनः आपके निर्बन्ध अर्थात् आग्रह पर उन्होंने सकल पुरुषार्थों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रदान करने वाले इस श्रीविद्या साधना तंत्र को प्राकट्य किया[१]।

श्रीविद्या का स्वरूप

श्रीविद्या साधना में परमराध्या, श्री ललिता महात्रिपुर सुन्दरी भगवती को परमतत्त्व के रूप में माना गया है। तत्रायं सिद्धान्तः—**'षटत्रिंशतत्त्वानि विश्वम्', 'शरीर कञ्चुकितः शिवो जीवो निष्कञ्चुकः परमः शिवः', 'स्वविमर्श-पुरुषार्थः', 'वर्मात्मिका, नित्याः शब्दाः', 'मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता', 'सम्प्रदायविश्वाभ्यां सर्वसिद्धिः** आदि श्रीपरशुराम कल्पसूत्र के इन सूत्रों में त्रैपुर सिद्धान्त का सारभूत संक्षिप्त ज्ञान भरा हुआ है।

---

१. **चतुःषष्टया तन्त्रैः सकलमतिसंधाय भुवनं**
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः।
पुगस्त्वन्निर्बन्धादखिल-पुरुषार्थैक घटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलभवातीतरदिदम्।।

(सौन्दर्यलहरी)

रामेश्वरवृत्ति में भी इसकी व्याख्या की गई है। सूत्रानुक्रम से वहीं पर श्रीचक्राधिष्ठात्री श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका महाषोडशी की उपासना के लिए क्रमपूर्वक पूजा पद्धति का विधान वर्णित है।

भारतीय आध्यात्मिक महार्णव से समुद्भूत षोडशकलापूर्ण सुधाकर के समान श्रीविद्या नाम समस्त आध्यात्मिक जगत् को आलोकित करता है। यही ब्रह्मविद्या है। 'परा विद्या' भी यही है इस विद्या की अधिष्ठात्री देवी संविदात्मिका महाशक्ति श्रीललिता। महात्रिपुरसुन्दरी है। इसकी उपासना का अपरिमित महत्त्व है। 'श्रीपरमशुराम कल्पूसत्र', 'योगिनी हृदय', 'त्रिपुरार्णव' तन्त्रराज आदि त्रैपुर-सिद्धान्त के प्रमाणिक ग्रन्थ हैं। इसमें क्रमानुसार हेमोपादेयता से न्यूनाधिक्य रूप से स्थूल, सूक्ष्म और पर इस त्रिविध साधना का विधान वर्णित है।

योगिनीहृदय में परा, परापरा, अपरा पूजा के नाम से वर्णित है। अपरा स्थूलोपासना, परापरा सूक्ष्मोपासना, परपरा उपासना की विधि एवं महत्त्व का समीचीन प्रतिपादन है। भास्करराय अमृतानन्द योगी आदि श्रीविद्यानिष्णात आचार्यों की टीका से यह मणि-काञ्चन योग हो गया है।

त्रिपुरारहस्यम् के त्रिखण्ड (महात्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, एवं चर्या खण्ड) में भगवती के महात्म्य एवं परमत्त्व की प्राप्ति के साधनों का विस्तृत वर्णन है। चर्याखण्ड अनुपलब्ध है।

यह विद्या सभी मनोरचों को पूर्ण करने वाली है, तथा अभ्युदय और निःश्रेयस् प्रदान करने वाली है। इसमें इहलौकिक एवं पारलौकिक दोनों कल्याण निहित हैं। यह सभी विद्याओं में उत्तम है। अतः इसे **श्रीविद्या** कहते हैं। तांत्रिक साधना का चरमलक्ष्य अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति है। भगवान् आदि शंकराचार्य ने अद्वैतमत की स्थापना की और **'यावत् व्यवहारो न विरमेत', तावद् अद्वैतं नैव सिद्धेत'** को दृष्टिगत करके कराल कलिकाल में व्यवहार की निवृत्ति सुदर्लभ है। अतः व्यवहार में रहते हुए भी अद्वैत सिद्धि हो जाए, इसके लिये त्रैपुरसिद्धान्तसारसर्वस्व 'सौन्दर्य लहरी' स्तोत्र की रचना करके आगमपोसना का मार्ग प्रशस्त किया एवं अपने पाँच सन्यासी और नौगृहस्थ शिष्यों से प्रचार-प्रसार करवा के दिव्य समयाचार सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। इसका **'श्रीविद्यार्णव'** में विस्तृत वर्णन है। शाक्तदर्शन में अद्वैत मत ही मुख्य है।

श्रीविद्या वाङ्मय में शाक्त दृष्टि

शाक्त मतानुसार समस्त चराचर जगत 'शक्ति' से ही उत्पन्न होता है। अतः परमतत्त्व के रूप में शक्ति को ही परमाराध्या माना गया है। यद्यपि ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता, विष्णु को पालनकर्ता एवं महेश को संहारकर्ता माना गया है, लेकिन सूक्ष्मता से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि ब्रह्मा में सृष्टि-शक्ति, विष्णु में पालन-शक्ति तथा महेश में संहारशक्ति निहित है। इसी प्रकार सूर्य में प्रकाश-शक्ति, अग्नि में तेजशक्ति, जल में शैत्य शक्ति विद्यमान है। अतः सभी का मूल आधार 'शक्ति' है।

सर्वशाक्तमजीजन्यत्—इस वेद वाक्य के अनुसार समस्त विश्व शक्ति से ही उत्पन्न होता है। शक्ति के द्वारा ही अनन्त ब्रह्माण्डों का पालन, पोषण और संहारादि होता है। ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, अग्नि, सूर्य, वरुण आदि देव भी उसी शक्ति से सम्पन्न होकर स्व स्व-कार्य करने में सक्षम हैं[२]।

अतः समस्त साधनाओं का मूलभूत शक्ति उपासना का क्रम आदिकाल से चला आ रहा है। देवगण एवं ब्रह्मविद् वरिष्ठ ऋषि महर्षियों ने भी शक्ति उपासना के बल से अनेक लोक-कल्याणकारी कार्य किए हैं। निगम, आगम, स्मृति, पुराण आदि भारतीय संस्कृत वाङ्मय में शक्ति उपासना की विविध विधायें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इसमें सर्वश्रेष्ठ स्थान **'श्रीविद्या साधना'** का है। भारत की यह परम रहस्यमयी सर्वोकृष्ट प्रणाली मानी जाती है। ईश्वर के निःश्वासभूत होने से वेदों की प्रमाणिकता है, तो शिव प्रोक्त होने के कारण तंत्रों की स्वतः प्रमाणिकता है। अतः सूक्ष्म रूप से वेदों में एवं विशदरूप से तंत्र शास्त्रों में श्रीविद्या साधना क्रम का विवेचन है।

---

२. **शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम्।**
इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम्।।
न वष्णिुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः।
न सूर्यो वरुणः शक्त स्वे-स्वे कार्ये कथञ्चन।।
तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुराः।
कारणं सैव कार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते।।
(देवी भागवत)

अद्वैतमत यद्यपि सारगर्भित है, लेकिन ज्ञानकाण्ड पर अधारित रहने के कारण यह मात्र विवेक प्रधान व्यक्तियों के लिए ही उपादेय है। अत: सर्वसाधरण की सुगमता के लिए आदि शंकराचार्य ने **श्रीविद्या** का प्रतिपादन किया। इस विद्या का उत्कृष्ट वर्णन 'सौन्दर्यलहरी' में वर्णित है, जिसमें शिव और शक्ति की समरसता का वर्णन करते हुए कहा गया है—शिव, शक्ति के संयुक्त होकर ही क्रियाशील होता है, शक्तिरहित होकर उसमें स्पन्दन की क्षमता नहीं होती। अत: उसे स्वयं को सक्रिय करने में शक्ति की अपेक्षा होती है[३]।

यही शक्ति तत्त्व श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी है। आगम शास्त्रों में शिव तत्त्व ही **'परब्रह्म'** है और शक्ति तत्त्व **'शब्दब्रह्म'** है। शक्ति उपासना से शिवत्व प्राप्ति ही शब्द ब्रह्म से परब्रह्म की प्राप्ति है। शिव तत्त्व, शक्ति के साथ संयुक्त होकर छत्तीस तत्त्व रूपी उपादान से जगत् एवं इसमें उपस्थित विभिन्न प्रकार के विषय-वस्तुओं की उत्पत्ति करता है। इस प्रकार वह स्वयं को दृश्यमान जगत के रूप में आभासित करता है। पुन: जीव शक्ति की उपासना द्वारा ही शिवत्व को प्राप्त करता है। जैसे—दीपक के प्रकाश एवं सूर्य की किरणों से दिशाओं के विभाग

---

३. **शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितु।**
न चेदेवँ देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।।
(सौन्दर्यलहरी)

का ज्ञान होता है, उसी प्रकार शक्ति द्वारा ही शिव की प्राप्ति होती है[४]।

पुन: कहा गया है—बिन्दु और नाद अर्थात् शिव शक्ति ही परमतत्त्व है[५]। प्रकाश, बिन्दु, शिव ये परब्रह्म के पर्याय हैं। निर्गुण निराकार ब्रह्म में 'सिसृषा' सृजन करने की इच्छा के फलस्वरूप ही (प्रकाश से विमर्श, बिन्दु से नाद) शिव से शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। इसे ही इच्छाशक्ति, चित्शक्ति, महाशक्ति आदि नामों से प्रतिपादित किया गया है।

समस्त विश्व में और विश्व के अनन्त प्राणियों में अन्तर्वहि, मध्य सर्वत्र व्याप्त चैतन्य तत्त्व ही 'श्रीललिता महात्रिपुर सुन्दरी' हैं, जो पूर्ण स्वातंत्र्य, सर्वज्ञान, क्रियासम्पन्न चेतन तत्त्व आत्मस्वरूप है। अत: आत्मोपासना ही श्रेष्ठ है। कहा गया है—जो आत्मदेवता को छोड़कर अन्य देवता की उपासना करते हैं, वे भिक्षा माँगकर बहुत धन प्राप्त कर लेने पर भी बुभुक्षित भिक्षुक ही रहते हैं[६]। आत्मारूपा श्रीललिता महात्रिपुर सुन्दरी की साधना का मूल आधार **'श्रीविद्या'** है।

---

४. **यथालोकेन दीपस्य किरणैर्भास्करस्य च।**
ज्ञायते दिग्विभागादि तद्वच्छक्त्या शिवः श्रितः।।
(विज्ञानभैरव)

५. **बिन्दुनादौशक्तिशिवौ शान्तातीतौ ततः परम्।**
षटत्रिंशत्तत्त्वमित्युक्तं शैवागम विशारदै।। (मानसोल्लास)

६. **उत्सृत्य स्वयमात्मानं ये ध्यायन्त्यन्यदेवता।**
भिक्षित्वा भूरिरिथ्तास्ते भिक्षित्वापि बुभुक्षिताः।।
(गीता निष्यन्द)

श्रीविद्या का महात्म्य

सौन्दर्य-लहरी में में त्रैपुर-सिद्धान्त का सारतत्त्व है, जिसमें मंत्र, यंत्र आदि साधना-पद्धति का वर्णन करते हुए इस श्रीविद्या साधना की फलश्रुति की व्याख्या है—

देवि ललिते! आपका भजन करनेवाला साधक विद्यायों के ज्ञान से विद्यापतित्व एवं धनाढ्यता से लक्ष्मी पतित्व को प्राप्त कर ब्रह्मा एवं विष्णु के लिए 'सपत्न' अर्थात् अपरपति प्रयुक्त असूया का जनक हो जाता है। वह अपने सौन्दर्यशाली शरीर से रतिपति काम को तिरस्कृत करता है एवं चिरंजीवी, पशु-पाशों से मुक्त, जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त होकर 'परमानंद' नामक रस का पान करता है, एवं ब्रह्मानन्द प्राप्त कर लेता है[७]।

आदि शंकराचार्य ने सौन्दर्य लहरी में श्रीविद्या का सार सर्वस्व बता दिया है, एवं श्रीविद्या के पञ्चदशाक्षरी मंत्र के एक-एक अक्षर पर बीस नामों वाले ब्रह्माण्डधुराणोक्त 'ललिता-त्रिशती' स्तोत्र पर भाष्य के माध्यम से अपने चारों मठों में श्रीयंत्र द्वारा श्रीविद्या साधना का परिष्कृत क्रम प्रारम्भ किया। जन्म-जन्मान्तरीय पुण्य-पुञ्ज के उदय से यदि किसी को गुरु कृपा से इस साधना का क्रम प्राप्त हो जाये और वह सम्प्रदाय पुरस्सर साधना करे

---

७. **सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नोसपत्नो विहरते**
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुवा।
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशत्यतिकरः
प्ररानन्दभिख्यं रसयति रसं त्वधभजनवान्।।

तो कृतकृत्य हो जाता है, इसके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह जीवनामुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है। लोक में इस विद्या के सामान्य ज्ञानवाले कुछ साधक तो सुलभ हैं, पर विशेष ज्ञाता अत्यन्त दुर्लभ हैं। कारण, यह अत्यन्त रहस्यमयी गुप्तविद्या है और शास्त्रों ने इसे सर्वथा गुप्त रखने का निर्देश दिया है। कह गया है—राज्य दिया जा सकता है, सिर भी समर्पित किया जा सकता है परन्तु श्रीविद्या का षोडशाक्षरी मंत्र कभी नहीं दिया जा सकता[८]।

अब प्रश्न उठता है कि यह संसार को कैसे प्राप्त हुआ? इसके उत्तर में कहा गया है—यह विद्या कर्णपरम्परा अर्थात् गुरु परम्परा से भूतल पर आयी[९]। विद्या वै ब्रह्मणमाजगाम गोपाय मां—इन उपनिषद वाक्यों का उपवृंहण करते हुए 'आत्मपुराण' में लिखा है—ब्रह्माविद्या अतिखिन्न होकर ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मण के पास गयी और बोली कि 'तुम मुझे वेश्या की तरह सर्वभौग्या मत बनाओ, अपितु कुलवधू की तरह मेरी रक्षा करो। मैं इस लोक और परोलक के लिये तुम्हारा अक्षयकोश हूँ'[१०]।

---

८. **न देयं परशिषयेभ्यो नास्तिकानांन चेश्वरि।**
न शुश्रुषालपञ्चनास नैवानर्थप्रदायिनाम्।

९. **तस्यमादेवंविधं शिष्यं न गृहणीयात् कदाचन्।**
यदि गृहति मोहेन तत्पापैर्तिप्यते गुरुः।। (षोडशिकार्णव)

१०. **परीक्षिताम दातव्यं वत्सरोध्वाषिताय च।**
एतज्ज्ञात्वा वरारोहे सद्यः खेचरतां व्रजेत्।।

इसके आगे यह विद्या किसे देनी चाहिए और किसे नहीं देनी चाहिए इसका भी वर्णन किया गया है। गुणवानों की निरन्तर निन्दा करना, आर्जवशून्यता, इन्द्रियों का दासत्व, काम प्रसङ्ग और उदण्डता तथा मन, वाणी, कर्म से गुरु के प्रति भक्तिहीनता आदि ऐसे दोष जिसमें वर्तमान हों उनसे सदा मेरी रक्षा करना। सावधानी से ऐसा करते रहोगे तो मैं कामधेनु के सदृश तुम्हारे सर्वमनोरथों को पूर्ण करुँगी। ऐसा न होने पर फलों से रहित लता के समान वन्ध्या हो जाऊँगी[११]।

पुनः कहा गया है—पराये गुरु के शिष्यों को, नास्तिकों को, सेवा में आलस्य एवं अर्थ न देनेवाले को यह विद्या कभी नहीं देनी चाहिए। यही नहीं यदि लोभ-मोह से ऐसे व्यक्ति को कोई इसका उपदेश देता है, तो वह उपदेष्टा गुरु उस शिष्य के पापों से लिप्त होता है[१२]। उपरोक्त दोषों से रहित और शम, दम, तितिक्षा आदि गुणों से युक्त साधकों को ही श्रीविद्या प्रदान करना चाहिए[१३]। ऐसे

---

११. राज्यं देयं, शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी।
(ब्रह्माण्डपुराण)

१२. कर्णात् कर्णोपदेशेन सम्प्राप्तमवनीतले।
(नित्याषोडाशिकार्णव)

१३. ब्रह्माविधातिसंखिन्ना ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं ययौ।
वाराङ्गनासमं मां हि मा कृथाः सर्वसेविताम्।।
गोपाय मां सदैव त्वं कुलजामिव योषिताम्।
शेषधिस्त्वक्षयस्तेऽहमिह लोके परत्र च।। (आत्मपुराण)

अधिकारी को एक वर्ष परीक्षा करके ही श्रीविद्या की दीक्षा देनी चाहिए[१४]।

श्रीविद्या के तीन रूप हैं—१. स्थूल, २. सूक्ष्म और ३. पर। तीनों का यहाँ सीमित विवरण में आवश्यक विवेचन सम्भव नहीं है। अत: यहाँ विशेष रूप से इसके स्थूलरूप के निरूपण का प्रयास किया जा रहा है। जहाँ स्थूल रूप श्रीचक्रार्चन और सूक्ष्मरूप श्रीविद्या मंत्र है। वहीं 'पर' पूजा शरीर में श्रीचक्र की भावना की विधि है। आचार्यों ने 'वामकेश्वर-तंत्र को—जिसमें **'नित्याषोडशिकावर्णव'** तथा योगिनीहृदय, दो चतुशती है। इसे श्रीविद्या का पूर्णरूप से विधान करनेवाला ६५वाँ तंत्र माना है, अत: उसी के अनुसार यहाँ सरलातिसरल भाषा में इस विषय पर प्रकाश डाला जा रहा है।

अब प्रश्न उठता है कि श्रीविद्या का मूल आधार 'श्रीयन्त्र' का स्वरूप क्या है?

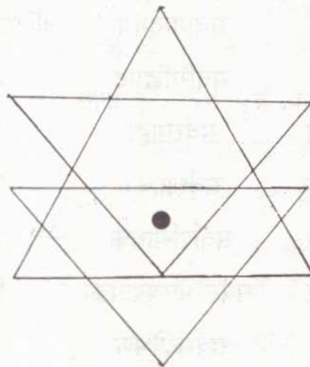
श्रीयंत्र का स्वरूप

यंत्र का तात्पर्य है—देवता को यंत्रित करना था समावेश करना। **श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः**—श्रीयंत्र शिव-शिवा का विग्रह है।

---

१४. निन्दा गुणवतां तद्वत् सर्वदार्जवशून्यता।
इन्द्रियाधीनता नित्यं स्त्रीसङ्गश्चाविनीतता:।।
कर्मणा मनसा वाचा गुरौ भक्ति विवर्जनम्।
एवमाद्या येषु दोषास्तेभ्यो वर्जय मां सदा।।
एवं ही कुर्वता नित्यं कामधेनुरिवास्मि ते।
वन्ध्यान्यथा भविष्यामि लतेव फलवर्जिता।।

'एको ज्योतिरभूत् द्विधा'—सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकाशस्वरूप एक ज्योति ही दो रूपों में परिणत हुई। यह जगत् **'जनकजननीमज्जगदिदम्'**—माता-पिता (शिव-शक्ति) के रूपमें परिणत हुआ। फिर इस जगत् का स्वेच्छा से निर्माण करने केलिए उस परम शक्ति मे स्फुरण हुआ और सर्वप्रथम श्रीयंत्र का आविर्भाव हुआ[१५]। बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार-बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय, भूपुर—इन नवयोन्यात्मक समस्त ब्रह्माण्ड का नियामक रेखात्मक श्रीयंत्र का प्रादुर्भाव हुआ[१६]।



नवयोन्यात्मकमिदं चिदानन्दघनं महत्

---

१५. यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरुपणिी।
स्फुरतामात्मनः परयेत्तदा चक्रस्य सम्भवः।। (नित्यावो.)

१६. बिन्दुत्रिकोणवसुक्रोणदशारयुग्म-मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोड-शारम्। वृतत्रयं च धरणीसदनत्रयं च श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः।

सर्वप्रथम बिन्दु के तीन रूप हुए—धर्म-अधर्म, चार आत्मा, मातृमेय और प्रमा—ये तीन इस प्रकार नौ हुए। त्रिकोण और अष्टकोण यही नवमोन्यात्मक श्रीचक्र है। शेष सब कोणों और दलों का इसी नवयोनियों में समावेश हो जाता है[१७]।

इस प्रकार नवमोन्यात्मक श्रीचक्र ४२ कोणों नौ आवरण एवं उसमें स्थित चक्रेश्वरियों का विवरण—

पूज्य देवता	**आवरण**	**नाम**	**चक्रेश्वरी**
१	बिन्दु	सर्वानन्दमय	ललिता महात्रिपुरसुन्दरी
३	त्रिकोण	सर्वसिद्धिप्रद	त्रिपुराम्बा
८	अष्टकोण	सर्वरोगहर	त्रिपुरासिद्धा
१०	अन्तर्दशार	सर्वरक्षाकर	त्रिपुरमालिनी
१०	बहिर्दशार	सर्वार्शसाधक	त्रिपुराश्री
१४	चतुर्दशार	सर्वसौभाग्यदायक	त्रिपुरवासिनी
७	अष्टदल	सर्वसंक्षोभण	त्रिपुरसुन्दरी
१६	षोडशदल	सर्वाशापूरक	त्रिपुररेशी
२७	भूपुर	त्रैलोक्य-मोहन	त्रिपुरा

---

१७. बैन्दवं चक्रमेतस्य त्रिरूपत्वं पुनर्भवेत्।
धर्माधर्मौ तथात्मानः मातृमेयौ तथा प्रभा।। (नित्याषोड.)

रेखात्मक श्रीयंत्र

श्रीविद्या सिद्धि के लिये इसी श्रीयंत्र की साधना की जाती है। इसमें मुख्य रूप से ९८ शक्तियों का अर्चन होता है। ये शक्तियाँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नियन्त्रित करती है। अत: श्रीयंत्र और विश्व का तादात्म्य है। श्रीविद्या साधक इन शक्तियों का अर्चन कर पहले अपने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और दसों इन्द्रियों पर नियंत्रण पाता है। फिर वाह्य जगत् पर भी नियंत्रण करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार श्रीयन्त्र और देह की एकता है। सिद्धिगत साधक अपने शरीर को ही श्रीयंत्र में भावित कर लेता है। इससे शापानुग्रह शक्ति प्राप्त हो जाती है। आगम शास्त्रों में श्रीयंत्र की विलक्षण महिमा वर्णित है। यह श्रीचक्र महात्रिपुर सुन्दरी का साक्षात् विग्रह एवं पराशक्ति का अभिव्यक्ति स्थान है। इसके पूजन से अनेक चमत्कारिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा समस्त व्याधियाँ एवं दरिद्रता दूर होती हैं। शान्ति, पुष्टि, धन आरोग्य, मंत्रसिद्धि, भोग एवं मोक्ष प्राप्त होता है। सब प्रकार की रक्षा, समस्त आनन्द, सकल कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है। तंत्र शास्त्र में अनेक अलौकिक विलक्षण चमत्कारों से परिपूर्ण इसके प्रभाव का विस्तृत वर्णन है। विधिवत् प्राण प्रतिष्ठा किये हुए एवं प्रतिदिन पूजित श्रीचक्र के दर्शन का महान् फल होता है[१८]। इसी प्रकार श्रीचक्र के पादोदक-पान से भी सहस्त्र कोटि

---

१८. सम्यक् शतक्रतून् कृत्वा यत् फलं समवाप्नुयात्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा श्रीचक्रदर्शनम्।।

तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त होता है[१९]। ये सभी महाफल श्रीयंत्र के नित्य नैमित्तिक विधिवत् अर्चन से ही सम्भव है।

श्रीयंत्र का अर्चन

जिसे परम्परा से साधना करनेवाले पारम्परीण गुरु के द्वारा श्रीयंत्र की दीक्षा प्राप्त हो एवं जो श्रीयन्त्रार्चन पद्धति का यथावत् ज्ञाता हो, वही श्रीयंत्र के अर्चन का अधिकारी है। इस अर्चना के लिए तंत्रशास्त्रों में वाम एवं दक्षिण दो मार्ग हैं। वाममार्ग की उपासना पुराकाल में सम्प्रदायविशेषमें प्रचलित थीं, किन्तु बौद्धकाल में उसका घोर दुरुपयोग हुआ और वह सम्प्रदाय छिन्न-भिन्न होकर अस्तप्राय: हो गया। तदनन्तर आदि शंकराचार्य ने दक्षिणमार्ग का एक परिष्कृत रूप लोकोपकारार्थ प्रस्तुत किया। आज तक अनवरत रूप से वही परम्परा चली आ रही है।

श्रीविद्या का स्वरूप

इसमें संवित् तत्त्व ही परतत्त्व है जो विश्वोत्तीर्ण एवं विश्वमय है। संवित् तत्त्व विश्व से परे है, अत: वह विश्वोत्तीर्ण है। पुन: यह विश्व उसके आनन्द की अभिव्यक्ति है। वह स्वयं को जगत् के रूप में आभासित करता है, अत: वह विश्वमय भी है। वस्तुत: जीव ही शिव है, लेकिन शरीर रूपी कञ्चुकी से आवृत्त रहने के कारण शिव जीव के रूप में आभासित होता है। पुन: कञ्चुकी रहित होने पर मात्र शुद्ध चैतन्य परम शिव ही रह जाता है। इस

---

१९. तीर्थस्थान सहस्त्रकोटिफलदं श्रीचक्रपादोदकम्।

शुद्ध चैतन्य स्वरूप की प्राप्ति को परम पुरुषार्थ माना गया है। शिव ही परब्रह्म है एवं इसकी प्राप्ति का साधन मन्त्र है, जो शब्द ब्रह्म है। मन्त्र रूपी शब्द ब्रहम से परब्रह्म की प्राप्ति होती है। साधक के लिए परम्परागत गुरुओं (परमेष्ठी गुरु, परम गुरु एवं गुरु) का स्मरण आवश्यक है। अतः गुरु से दीक्षा लेकर ही कोई साधना का आधिकारी बन सकता है।

'संक्षेप में' श्रीविद्या में तीन भाव हैं—पशु भाव, वीर भाव, दिव्य भाव। दो मार्ग हैं—वाम मार्ग एवं दक्षिण मार्ग। सप्त भूमिका है—आरम्भोल्लास, तरुणोल्लास, यौवनोल्लास, प्रौढोल्लास, तदन्तोल्लास, उन्मनोल्लास एवं अनवस्योल्लास।

दीक्षा के अनन्तर यथा समय गुरु इन प्रक्रिया का ज्ञान कराता है। इसमें कालि क्रम व श्री क्रम है, साधना में दोनों क्रमों का ज्ञान परमावश्यक है।

श्रीविद्या की अधिष्ठात्री देवी श्रीललिता महात्रिपुरसुन्दरी है, जो षञ्चकृत्य परायणा है—सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह एवं अनुग्रह ये पाँच कृत्य हैं। आणव, मायिक, कार्मण ये तीन मलों की शुद्धि से स्वरूप ज्ञान हो जाता है।

इस मार्ग का प्रामाणिक ग्रन्थ श्रीगौड़पादाचार्य-विरचित 'सभगोदय-स्तुति' है। शंकरभगवत्पाद-विरचित 'सौन्दर्य लहरी' में श्रीविद्यामन्त्र, यन्त्र आदि का साङ्गोपाङ्ग विवेचन है। इसकी अनेक आचार्यों द्वारा की हुई अनेक टीकाएँ भी उपलब्ध हैं। इसके सौ श्लोक सौ ग्रन्थों के समान हैं। 'सौन्दर्यलहरी' भगवती की साक्षात्

वाङ्मयी मूर्ति ही है। इसी के आधार पर विरचित पद्धतियाँ दक्षिण भारत और उत्तर भारत से प्रकाशित हुई हैं। इन पद्धतियों के अनुसार पूजा करने में कम-से-कम ढाई घंटे का समय लगताहै। इसकी यह विशेषता है कि इतने समय में मन इधर-उधर कहीं नहीं जा पाता। फलतः क्रमशः आणव, मायिक, कार्मिक मलों की शुद्धि से उपास्यतत्त्व की उपलब्धि हो जाती है। **'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यामृतमश्नुते'**—इस श्रुति के अनुसार कर्मकाण्डद्वारा अन्तःकरण शुद्ध होने पर तत्त्वज्ञान की स्थिति बनती है। इस प्रकार इस साधना की यही विशेषता है कि इससे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

यह एक परमकल्याणकारी सरल सुगम साधना है। **'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'** के अनुसार ऐसे कल्याणकारी कार्यों में प्रायः विघ्नों की सम्भावना रहतीहै, इसलिये इसमें महागणपति की उपासना अनिवार्य है। जैसे राजा से मिलने के लिये पहले मन्त्री से मिलना आवश्यक है, वैसे ही मताङ्गी की उपासना भी इसकी अङ्गभूत है। मातङ्गी पराम्बा राजराजेश्वरी ललिता महात्रिपुरसुन्दरी की मन्त्रिणी हैं। इनके 'श्यामला', 'राजमातङ्गी' आदि नाम हैं। ये भक्त के समस्त ऐहिक मनोरथ पूर्ण करती करती हैं। शिष्टानुग्रह और दुष्ट-निग्रह के लिये 'वार्ताली' का उपासना-क्रम भी अनुष्ठेय है। ये पराम्बा की दण्डनायिका (सेनाध्यक्षा) हैं। इसके वाराही, वार्ताली, क्रोडमुखी आदि नाम हैं। यह साधक की सर्वप्रकार से रक्षा और शत्रुओं का दमन करती हैं। इस प्रकार इसमें गणपति-

क्रम, श्री-क्रम, श्यामला-क्रम, वार्तालि-क्रम, परा-क्रम[२०]—ये पाँच क्रम विहित हैं।

प्रात:काल गणपति-क्रम, पूर्वाह्न में श्री-क्रम, अपराह्न में श्यामला-क्रम, रात्रि में वार्ताली-क्रम और उषाकाल में परा-क्रम का विधान है। इन पाँच क्रमों की 'सपर्या-पद्धति' भी प्रकाशित है। 'श्रीविद्यारत्नाकर' में इनके मन्त्र-यन्त्र, पूजाविधान, जप आदि का साङ्गोपाङ्ग विवरण है। इस छोटी सी पुस्तक में इनका विशद विवेचन सम्भव नहीं है। दीक्षाकाल में ही इनका गुरुद्वारा निर्देश होता है। इन क्रमों के प्रभाव से यह श्रीविद्यासाधना भोग-मोक्ष-प्रदायिनी कही गयी है[२१]।

इस प्रकार श्रीयन्त्र की पूजा मांत्र से ही जीव शिवभाव को प्राप्त हो जाता है। योग एवं वेदान्त आदि साधनपथ सर्वसाधारण के लिये सुलभ नहीं; क्योंकि ये अत्यन्त क्लिष्ट और चिरकालसाध्य हैं, और तान्त्रिक विधि के साधन सरल, सर्वजनोपयोगी तथा शीघ्र ही अनुभूति प्रदान करने वाले हैं।

श्रीयन्त्र की पूजा मात्र से आत्मज्ञान व मनोनिग्रह कैसे होता है, इसका संक्षिप्त परिचय देना हो तो कहा जायगा कि समस्त

---

२०. श्रीविद्या वंविरस्या में केवळ श्रीयन्त्र पद्धति है। प्रात: स्मरणीय पुज्य पाद गुरुमहारज श्री षोडशानन्दनाथ (करपात्र स्वामी) द्वारा विरचित है। इनकी अनुकम्पा से इनका संपादन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

२१. पराक्रम अन्तर्माग का पर्याय है। श्रीविद्या रत्नाकर में इसकी विधि दी गई है, परन्तु यह गुरुमुखैक मात्रगम्य है।

साधन-सरणियों का चरम लक्ष्य है 'मनोनिग्रह'—मनकी एकाग्रता। यदि उत्तमोत्तम साधन मार्ग भी अपनाया गया, किन्तु मन एकाग्र नहीं हुआ तो सारा प्रयास विफल है। **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'**। सांसारिक व्यवहार से लेकर निर्गुण ब्रह्म ज्ञान तक मन ही कारण है। मनोयोग ही समस्त कार्य-कलापों में प्रधान है।

श्रीसदाशिवप्रोक्त आगम-साधना-सरणि में समस्त क्रियाएँ ही मन को एकाग्र करने के लिये बतायी गयी हैं। श्रीमद्भागवत में कहा है—जो शीघ्र हृदयग्रन्थि का भेदन चाहता है, वह तान्त्रिक विधि से केशव की आराधना करे'। 'केशव' यह उपलक्षण है, किसी भी देवता की साधना करे[२२]।

'श्रीविद्या-साधना' तन्त्र-शास्त्रों में सर्वोच्च मानी गयी है। इसे भगवती पराम्बा के निर्बन्ध से भगवान् विश्वनाथ ने प्रकट किया है। अतः इसमें मनको एकाग्र करने की विशिष्ट क्रियाएँ समवेत हैं। देखिये, श्रीयन्त्र की पूजा में मन को किस प्रकार एकाग्र करने की विलक्षण प्रक्रिया है—

देवो भूत्वा यजेत् देवान् नादेवो देवमर्चयेत्।

देवता बनकर ही देवता का पूजन करने का शास्त्र का आदेश है। इस पूजा में सर्वप्रथम भूतशुद्धि का स्पष्ट विधान है। जिसमें प्राणायाम द्वारा हृदय में स्थित पापपुरुष का शोषण-

---

२२. य आशु हृदय हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः।
विधिनोपचरेद् देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम्।।

दहनपूर्वक शाम्भव-शरीर का उत्पादन कर षञ्चदश-संस्कार, प्राणप्रतिष्ठा, मातृकादि-न्यासों से मन्त्रमय शरीर बनाया जाता है, जिससे देवभाव की उत्पत्ति होती है। तन्त्रों में महाषोढ़ा न्यासादिका महाफल लिखा है—**'एवं न्यासे कृते देवि साक्षात् परशिवो भवेत्'**। इस प्रकार स्वस्थ मन, स्वच्छ वस्त्र और सुगन्धित वस्तुओं से सुरभित वातावरण में यह पूजा की जाती है।

श्रीयन्त्र की पूजा करने के लिये कलश, सामान्यार्घ्यपात्र, विशेषार्घ्य (श्रीपात्र), शुद्धिपात्र, गुरुपात्र, आत्मपात्र आदि पूजा-पात्रों का आसादन होता है।

सामान्यार्घ्य की स्थापना को ही लीजिये तो पहले पात्राधार के लिये एक मण्डल बनाया जाता है। उसका मूल मन्त्र षडङ्ग से अर्चन होता है। फिर उस पर आधार की स्थापना होता है। उसमें अग्नि-मन्त्र से अग्निमण्डल की भावना की जाती है एवं दस वह्निकलाओं का पूजन होता है। तदनन्तर आधार पर सामान्यार्घ्य-पात्र का स्थापन किया जाता है, फिर उसमें मन्त्र से सूर्यमण्डल की भावना कर द्वादश सूर्यकलाओं का अर्चन होता है। मन्त्र से षडङ्ग अर्चन किया जाता है। इस प्रकार सामान्यार्घ्य-स्थापना करने में इतना क्रियाकलाप है। विशेषार्घ्य स्थापान में इससे भी अत्यधिक प्रपञ्च है। इस तरह पात्रों को स्थापन करने की क्रिया में ही मन को इतना समाहित किया जाता है। फिर अन्तर्याग, बहिर्याग, चतुःषष्ठी उपचार, श्रीचक्र में स्थित नवावरण में शताधिक शक्तियों का अर्चन, जिसमें तत्तत् शक्तियों का

मन्त्रोच्चारण, श्रीयन्त्र के तत्तत् कोण में स्थित तत्तत् शक्ति का ध्यान, पुष्पाक्षत-निक्षेप एवं श्रीपात्रामृत से तर्पण—यह क्रिया एक शक्ति के अर्चन में एक साथ होनी आवश्यक है। इसमें किंचित् भी मन विचलित हुआ तो पूजन-क्रम में व्याघात उत्पन्न हो जाता है। अत: इन क्रियाओं के सम्पादन में साधक का मन बलात् एकाग्र हो जाता है।

इस प्रकार पूजा के अनवरत प्रयोग से शनै:-शनै: मनका चाञ्चल्य दूर होकर वह समाहित होने लगता है। मन की यही स्थिति ध्यान एवं समाधि-अवस्था की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार इसी जीवन में क्रमश: श्रीयन्त्र की यह पूजा जीवन्मुक्तावस्था एवं शिवत्वभाव की प्राप्ति का अनुपमेय अमोघ साधन है[२३]।

श्रीविद्या-मन्त्र

'श्रीविद्या-मन्त्र' श्रीयन्त्र की पूजा का अभिन्न अङ्ग है। मन्त्र क चार रूप हैं—बाला त्रिपुरसुन्दरी त्र्यक्षरी, पञ्च-दशाक्षरी, षोडशी एवं महाषोडशी। फिर इनके अनेक अवान्तर भेद हैं। इनमें कादि और हादि दो मुख्य भेद प्रचलित हैं। कादि मन्त्र की उपासना-परम्परा अत्यन्त विशाल हैं। आचार्य शंकर ने भी 'त्रिशती' पर

---

२३. **एवमेव महाचक्रसंकेत परमेश्वरि।**
कथितस्त्रिपुरादेव्या: जीवन्मुक्तिप्रवर्तक:।।

भाष्य लिखकर कादि मन्त्र को ही विशेष महत्त्व दिया है। इसे सत्तर करोड़ मन्त्रों का सार माना जाता है।

वर्णमाला के पचास अक्षर हैं। इन्हीं पचास अक्षरों से समस्त वेदादि-शास्त्र एवं समस्त मन्त्रविद्या ओत-प्रोत हैं। इस वर्णमाला का नाम 'मातृका' है। यह समस्त वाङ्मय एवं विश्व की प्रसवित्री है। 'नित्याषोडशिकार्णवण' की मातृकास्तुति में सर्वप्रथम मङ्गलाचरण के रूप में इसी का उल्लेख है। कहा है कि जिसके अक्षररूप महासूत्र में ये तीनों जगत्—स्थूल, सूक्ष्म, समस्त ब्रह्माण्ड अनुस्यूत है, उस मातृका को हम प्रणाम करते हैं[२४]।

भगवान् सदाशिव ने मातृका के सारसर्वस्व से अचिन्त्य, अनन्त, अप्रमेय, महाप्रभावशाली महामन्त्र का प्राकट्य किया है। 'योगिनीहृदय' ने इसे जगत् के माता-पिता—शिव-शक्ति के सामरस्य से समुद्भूत माना है—**शविशक्तिसमायोगाज्जनितो मन्त्रराजकः**।

वेदविद्या के मन्त्र प्रकट हैं, जब कि श्रीविद्या-मन्त्र गुप्त है। श्रीविद्या का मन्त्र सम्प्रदायपुरस्सर गुरु परम्परा के द्वारा प्राप्त करने से ही इसके रहस्य का ज्ञान हो सकता है। इस मन्त्र केअनेक आकार-प्रकार हैं। इसके छः प्रकार के अर्थ हैं—भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निमगमार्थ, कौलिकार्थ, सर्वरहस्यार्थ और महातत्त्वार्थ।

---

२४. **यदक्षरमहासूत्रप्रोतमेतज्जगत्त्रयम्।**
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धामातृकाम्।।

यह सब गुरु परम्परा के द्वारा ही लभ्य है[२५]। 'योगिनीहृदय में यही कहा गया है।

इस मन्त्र के गूढ़ रहस्यों का ज्ञान परम्परा से साधना करनेवालों को ही होता है। यदि कोई पुस्तक में पढ़कर या अन्य छल-छिद्रों से इस मन्त्र को प्राप्त करता है और अपने ज्ञान के गर्व से मनमाने ढंग से जपता है तो लाभ की जगह हानि ही होती है[२६]।

अत: गुरुपरम्परा से प्राप्त इस विद्या का ज्ञान प्राप्त करने से उत्तमोत्तम फल प्राप्त होते हैं। यह विद्या ज्ञानमात्र से भवबन्धन से छुटकारा, स्मरण से पापपुञ्ज का हरण, जप से मृत्युनाश, पूजा से दु:ख-दौर्भाग्य-व्याधि और दरिद्रता का विध्वंस, होम से समस्त विघ्नों का शमन, ध्यान से समस्त कार्यसाधन करने वाली है।

श्रीविद्या मन्त्र में समस्त मन्त्रों का समावेश है। 'योगिनीहृदय' में कहा है—'जैसे मत्स्य फँसाने के जाल के सभी तन्तु लोहे के वलय में पिरोये रहते हैं, वैसे ही इस श्रीविद्यामन्त्र में समस्त मन्त्र ओत-प्रोत हैं'। इसके समान या इससे उत्तम दूसरा मन्त्र नहीं है[२७]। यह सात करोड़ महामंत्रों का सार है।

---

२५. मन्त्रसंकेतकस्तस्या नानाकारो व्यवस्थित:।
नानामन्त्रक्रमेणैव पारम्पर्येण लभ्यते।।

२६. पारम्पर्यविहीना ये ज्ञानमात्रेण गर्विता:।
तेषां समयलोपेन विकुर्वन्ति मरीचय:।।

२७. वागुरामूलवलये सूत्राद्या: कवलीकृता:।
तथा मन्त्रा समस्ताश्च विद्यायामत्र संस्थिता:।।

कुण्डलिनी शक्ति से इस मन्त्र का साक्षात् सम्बन्ध है। तन्त्रमार्ग की साधना का कुण्डलिनी-जागरण ही प्रधान अङ्ग है। यह मन्त्रयोग से ही सरलता से यथाशीघ्र सिद्ध होना सम्भव है। इसलिये शास्त्रों में इसकी महिमा और गरिमा का अत्यधिक वर्णन है। यही श्रीविद्या का सूक्ष्मरूप कहा जाता है। इसके उच्चारण और जपविधि में ही रहस्य भरा हुआ है।

तन्त्रों में महाषोडशी के मन्त्र का एक बार भी उच्चारण महाफलप्रद है।

स्वयं भगवान् सदाशिव पार्वती से कहते हैं कि कोटि-कोटि वाक्यों से एवं कोटि-कोटि जिह्वा से श्रीविद्या षोडशाक्षरीका मैं वर्णन नहीं कर सकता। एक बार उच्चारण मात्र से कोटि वाजपेय यज्ञ, सहस्रों अश्वमेघ यज्ञ, समस्त पृथिवी की प्रदक्षिणा एवँ काशी आदि तीर्थों की करोड़ों बार यात्रा इस श्रीविद्यामन्त्र के समान नहीं है। देवेशि! इसमें कोई संशय नहीं[२८]।

साधक स्थूल रूप श्रीचक्रार्चन, सूक्ष्मरूप श्रीमन्त्र और पररूप शरीर को ही श्रीचक्र रूप में भावित कर कृतकृत्य हो जाता है।

---

२८. **वाक्यकोटिसहस्रेषु जिह्वाकोटिशतैरपि।**
वर्णितुं नैव शक्योऽहं श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्।।
एकोच्चारणं देवेशि वाजपेयस्य कोटयः।
अश्वमेघसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा।।
काश्यादितीर्थयात्राः स्युः सार्धकोटित्रयान्विताः।
तुलां नार्हन्ति देवेशि नात्र कार्या विचारणा।।

श्रीविद्या के पररूप की उपासना का फल भावनोपनिषद् में लिखा है—**'एवं भावनापरो जीवन्मुक्तो भवति, स शिवयोगीति निगद्यते'**। इस प्रकार भावना करनेवाला जीवन्मुक्त होता है और वह शिवयोगी कहाजाता है। इस भावनोपनिषद् की प्रयोगविधि महायाग-क्रम में भास्करराय लिखते हैं—**'तस्य देवतात्मैक्यसिद्धिः, तस्य चिन्तितकार्याणि अयत्नेन सिद्ध्यन्ति'** अर्थात् उस साधक का देवता के साथ तादात्म्यभाव हो जाता है और उसके चिन्तित कार्य बिना यत्न के ही सिद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार परम रहस्यमयी सर्वोत्कृष्ट श्रीविद्या की साधना-सरणि के यथार्थ रूप का उल्लेख सर्वथा असम्भव है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि इस श्रीविद्या-साधना-पद्धति का अनुष्ठान और प्रचार-प्रसार भगवत् के चार अवतारों—भगवान् दत्तात्रेय, श्रीपरशुराम, भगवान् हयग्रीव एवं भगवत्पाद आद्यशंकराचार्य ने किया और इसे सर्वजनोपयोगी सरल बनाने में उत्तरोत्तर श्लाघनीय कार्य किया। भक्ति, ज्ञान, कर्मयोग आदि समस्त साधना-मार्गों का यह समुच्चय है। जिस स्तर का साधक हो, उसके लिये तदनुकूल साधना का उच्चतम एवं श्रेष्ठतम सुन्दर विधान परिलक्षित हो जाता है। अतः इसकी उपादेयता सर्वोत्तम मानी जाती है। यही साक्षात् ब्रह्मविद्या है।

भगवत्पाद आचार्य शंकर कहते हैं कि सरस्वती ब्रह्मा की गृहिणी हैं, विष्णु की पत्नी पद्मा, शिव की सहचरी पार्वती हैं।

किन्तु आप तो कोई अनिर्वचनीया तुरीया हैं, समस्त विश्व को विवर्त करनेवाली दुरधिगम निस्सीम-महिमा महामाया परब्रह्म की 'पट्टमहिषी' पटरानी हैं[२९]।

परब्रह्म महिषी

आचार्य शङ्कर ने निर्गुण निराकार निर्विकल्प, अप्रक्र्य अनिर्देश्य तत्त्व को 'परब्रह्म महिषी' परब्रह्म की पटरानी कहना एक अति विलक्षण संज्ञा प्रतीत होती है, इसमें बड़ा रहस्य भरा हुआ है। तन्त्रशास्त्रों में संवित् तत्त्व ही परम तत्त्व है, शिव लोकोत्तीर्ण तत्त्व है और शक्ति तत्त्व लोकमय है। अत: शिवशक्त्यात्मक तत्त्व लोकोत्तीर्ण एवं लोकमय भी है। यही तन्त्रों का सिद्धान्त का सार सर्वस्व है। शब्द बह्म से परब्रह्म की प्राप्ति ही श्रीविद्या साधना का चरम लक्ष्य है। इस साधना की प्रक्रिया में साधक सिद्धि सिद्ध यह त्रिपुरी है। इसका तात्पर्य है कि सर्वप्रथम साधक बनों, तब सिद्धि प्राप्त होगी और सिद्धियों का सांसारिक दुरुपयोग न करने से सिद्धावस्था प्राप्त होगी। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधना पद्धतियाँ है। गुरु परम्परानुसार इन पद्धतियों के क्रम से उपासना करने से चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।

---

२९. **गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो**
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम्।
तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी।। (सौन्दर्यलहरी)

इसमें मुख्य रूप से परम्परागत साधना करने वाले गुरु से दीक्षा प्राप्त करके साधनामय जीवन बनाना, शास्त्रोक्त नियमों का पालन करना। प्रात: काल से लेकर रात्रिपर्यन्त कर्तव्यों का सम्पादन इन प्रक्रियाओं का साधना पद्धतियों में निरुपण रहता है।

हमारी परम्परा की पद्धति 'श्रीविद्यारत्नाकर' 'श्रीविद्यावरिवस्या' है। प्रात: स्मरणीय गुरुदेव स्वामी करपात्री जी द्वारा लिखित है। 'श्रीविद्यारत्नाकर' में साधना से लेकर सिद्धिपर्यन्त तत् तत् अपेक्षित कर्मानुष्ठानों का प्रतिपादन किया गया है। श्रीविद्यावरिवस्या में प्रात:काल से रात्रिपर्यन्त साधना विधि का निरूपण एवं श्रीयन्त्र अर्चन के समग्र विधि विधानों का संकलन किया गया है।

प्रात:स्मरण में जो भावना की गई है उसको क्रियात्मक रूपमें परिवर्तित किया गया है। तन्त्र आगम शास्त्रों का सिद्धान्त है कि जीव शिव है जैसे—'जीवो ब्रह्मैव नापर:' के अनुसार जीव को शिवपद प्राप्ति के लिए ही समस्त क्रिया कलापों का अनुष्ठान किया जाता है। आणव मायिक और कार्मण ये तीन मल हैं। इन तीन मलों से आवृत्त होने से शिवत्त्व भाव का तिरोधान हो गया है। इन्हीं तीनों मलों की निवृत्ति के लिए पूजा प्रकरण का विधान है। इसमें आणव, मायिक, कार्मण मल की शुद्धि के द्वारा पूर्णत्त्व प्राप्ति की प्रक्रिया है।

इसी प्रकार साधना करने वाला साधक होता है, इस प्रक्रिया को निरन्तर सम्पादन करने पर सिद्धि अवस्था प्राप्त होती है। सिद्धियों के चक्कर में न फसने से सिद्धावस्था प्राप्त हो जाती

है। इसी को मानवता से देवत्व और देवत्व से पूर्णत्व की ओर प्रयाण होता है।

इस छोटी सी परिचय पुस्तिका में यत्किञ्चित् श्रीविद्या का स्वरूप निरूपण करने का प्रयास किया गया है। शास्त्रीय सिद्धान्तों का अनुसरण कर के ही सरल भाषा में प्रतिपादित किया है। पूज्य गुरुदेव शास्त्रों को भगवान् की आज्ञा मानते थे, कहते थे कि—

ये शास्त्र विधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

इस श्रीमद्भगवद्गीता के वचनानुसार सभी कर्म शास्त्रानुसार करने का निर्देश करते थे। शास्त्रीय विधि का त्याग करके जो कार्य किया जाता है, उससे सिद्धि सुख और परमगति प्राप्त नहीं होती है।

शेष में श्रीचरणों में शत्त, शत्त, नमन करता हूँ जिन्होंने वेदान्त, भक्ति, योग के द्वारा तत्त्व ज्ञान प्राप्त करने पर भी लोककल्याण के लिए श्रीविद्या साधना का प्रचार-प्रसार किया।

शास्त्रीय परम्परा के अनुसार श्रीविद्या साधना में प्रवृत्त हुए।

सर्वप्रथम सम्प्रदाय परम्परा से श्रीविद्या साधना करने वाले गुरु से ओंकारेश्वर में दीक्षा लेकर साधना का पूर्ण क्रम अनुष्ठित किया। तदनन्तर 'श्रीविद्यारत्नाकर' 'श्रीविद्यावरिवस्या' से श्रीविद्या साधना साहित्य को समृद्ध किया, एवं शिष्य परम्परा के द्वारा उत्तर भारत में विलुप्त परम्परा को पुनः प्रतिष्ठित किया।

श्रीविद्या साधना में तीन गुरुओं का स्मरण करना आवश्यक है। अतः गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु इस गुरु परम्परा को सुरक्षित किया।

श्रीगुरु चरणों की मान्यता के अनुसार 'अद्वैत सिद्धि' विश्वबन्धुत्व की भावना के लिए श्रीविद्या साधना सर्वोत्तम है। वेदों पर भाष्य लिखकर वैदिक वाङ्मय को सुरक्षित एवं समृद्ध किया, धर्मशास्त्रों के विषय में लेखन एवं भाषण से अप्रतिम प्रतिपादन किया। धर्मरक्षा के लिए पूरा जीवन समर्पित किया। शेष में श्रीविद्या के प्रचार-प्रसार के लिए 'श्रीविद्यारत्नाकर' 'श्रीविद्यावरिवस्या' का प्रणयन किया, एवं 'श्रीविद्यामन्त्र भाष्य' लिखा। वह संस्कृत भाषा में है शीघ्र ही राष्ट्रभाषा में अनुवाद करके प्रकाशित किया जायेगा।

'गुर्वर्थे, प्राणधारणम्' तन्त्र शास्त्रों का सिद्धान्त है कि गुरु के लिए ही प्राणधारण करें, अर्थात् उनके निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हुए उनकी आकांक्षाओं को पूर्ण करें। महाराजश्री की यह इच्छा थी कि श्रीविद्या साधना का प्रचार-प्रसार अधिकाधिक होना चाहिए, विश्व कल्याण के लिए यह सर्वोत्तम साधन है।

श्रीचरणों की इस आकांक्षा का किञ्चित् रूप में भी पूर्ति कर सकूँगा तो स्वयं को कृतकृत्य मानूँगा।

यन्त्रों का स्वरूप

तन्त्रशास्त्रों के यन्त्र 'श्रीयन्त्र शिवयोर्वपु'। श्रीयन्त्र शिवऔ शक्ति का विग्रह (शरीर) है।

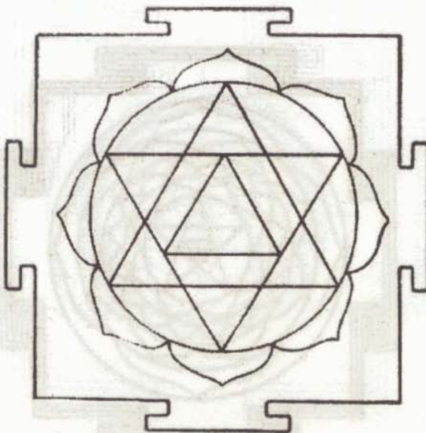
पञ्चदेव उपासना में विष्णु, शिव शक्ति, गणेश, सूर्य आदि देरताओं की मूर्त्तियाँ बनाकर पूजन किया जाता है एवं मन्दिरों में भी प्राण प्रतिष्ठा करके स्थापना की जाती है। सनातन हिन्दु धर्म के वेदादि धर्म शास्त्रों में इसका अप्रमेय अतिशय महत्त्व

प्रतिपादन किया गया है। इसी प्रकार तन्त्रशास्त्रों में यन्त्र बनाकर इष्ट देवता की पूजा का विधान है। इससे पूजा फल की अतिशीघ्र अनुभूति होती है।

अत: श्रीविद्या साधना से सम्बन्धित यन्त्रों का वर्णन करना आवश्यक है। श्रीयन्त्र के महत्त्व का प्रतिपादन इस छोटी सी पुस्तक में सूक्ष्म रूप से किया गया है। तन्त्र शास्त्रों में अतिविस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

महागणपति-यन्त्र

महागणपति यन्त्र 'श्रेयांसिबहुविघ्नानि' कल्याण कारी कार्यों में बहुत विघ्न आते हैं। श्रीविद्या परमकल्याणकारी साधना है। अत: विघ्न निवारण के लिये महागणपति की उपासना आवश्यक



श्रीमहागणपति-यन्त्र

है। श्रीविद्यारत्नाकर में एवं मेरे द्वारा विरचित 'महागणपति वरिवस्या' में इस यन्त्र की पूजा पद्धति विधिविधान दिया गया है। इस गणपति यन्त्र के पूजन से वघ्नि दूर होते हैं। एवं इष्ट सिद्धि शीघ्र होती है।

मातङ्गी यन्त्र

राजराजेश्वरी ललिता महात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका की मातङ्गी मन्त्रणी (सचिवा) है। जैसे राजा से मिलने के लिये मन्त्री को प्रसन्न किया जाता है वैसे ही श्रीविद्या अधिष्ठात्री ललिता महात्रिपुरसुन्दरी की प्रसन्नता के लिये मातङ्गी की उपासना आवश्यक है। मातङ्गी, श्यामला, मन्त्रीणी, सचिवा, संङ्गीतका, श्यामा आदि इसके नाम हैं। इसकी उपासना से वाक्पटुता, कवित्वशक्ति, प्रशासन कुशलता, संगती ज्ञान, वशीकरण आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

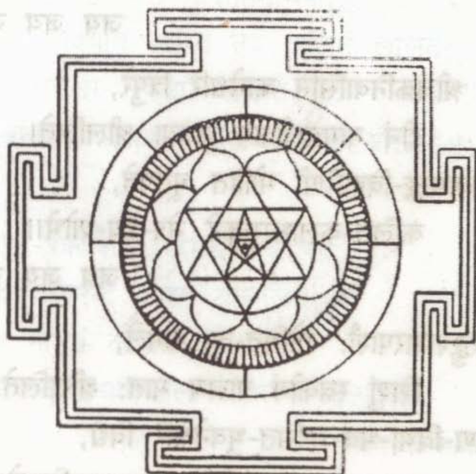


मातङ्गी-यन्त्र

वार्ताली यन्त्र

शिष्टानुग्रहद्रष्ट निग्रह के लिये इसकी उपासना होती है।

जैसे राजा के सेनापति, दण्डाधिकारी होते हैं, उसी प्रकार भगवती राजराजेश्वरी के वार्ताली दण्डनायिका है। वार्ताली , वाराही, कोड़ पुरवी, दण्डनायिका इसके नाम हैं। यह दुष्टो का दमन करती हैं और सज्ञनों पर अनुग्रह करती हैं। इसकी उपासना से शापानुग्रह शक्ति प्राप्त होती है। इनकी स्वतन्त्र उपासना का भी विधान है, श्रीविद्या साधना में इनके मन्त्र जप से तत् तत् कार्य सम्पन्न होते हैं और श्रीविद्या साधना शीघ्र सिद्ध हो जाती है।



वार्ताली-यन्त्र

श्रीललिता नीराजनम्

जय जय जय ललिते

जय जगदीश्वरि मातः श्रीसुन्दरी ललिते,
त्वं माम् पालय नित्यं विश्वेश्वरि वरदे।
मञ्जुल मङ्गलदायिनि परमानन्द प्रदे,
सकलमनोरथ पूरिणि मातः श्री ललिते।।
जय जय जय ललिते

जय श्रीचक्रनिवासिनि कामेश्वरि त्रिपुरे,
दीनं मामवलोकय कृपया श्रीललिते।
शिववामाङ्क-विहारिणी मोहित भूतपते,
कलित-कलाधरमुकुटे नेत्र-त्रय-शोभे।।
जय जय जय ललिते

धनुरङ्कुशशरपाशैः शोभित-कर-कमले,
शिशुं स्वकीयं पालय मातः श्रीललिते।
अरुण-विभा-भव-भासित-भुवनेश्वरि विद्ये,
भव-भय-भञ्जनकारिणि भवनाटकनिपुणे।।
जय जय जय ललिते

विधिहरिसुरपतिमुकुटैः वन्दितपदपद्मे,
नीराजनमवलोकय भगवति चितिरूपे।
संवित्त्व-स्वरूपिणि निगमागमगीते,
संतत-चिन्तित-सच्चित्-स्वानन्दे ललिते॥
जय जय जय ललिते

विन्दुनाद-भवभासिनि शिवशक्तिप्रथिते,
स्पन्दसुधारस-वर्णिणि शाम्भवि शक्ति शिवे।
नीराजनमिदममलम् आरात्रिक-समये,
भक्त्या गायति सकलं भद्रं संचिनुते॥
जय जय जय ललिते

नृत्यति गायति कलयति मुदितमना मनुते,
रूपं पश्यति त्वरितं तव ललितं ललिते।
निरुपाधिक-कामेश्वर-कामेश्वरि ललिते,
अरुणिम तरुणि-मण्डल मण्डित श्रीसदने॥
जय जय जय ललिते

निष्कल-तत्त्व-प्रकाशिनि परमेश्वरि ललिते,
दत्तात्रेयानन्दं नाथय श्रीललिते।
चरणसरोजे नमितं लोकय श्रीललिते,
शरणागत-प्रतिपालिनि पालय श्रीललिते॥
जय जय जय ललिते

॥ललितानीराजन सप्तकम् सम्पूर्णम्॥

।।श्री।।

कुण्डली-जागरणम्

जागो जगदाधार मैया । जागो जगदाधार ।
साधो मन के तार मैया । साधो मन के तार ।।
जप तप जोग कछु नहीं जानूँ । सुषुम्ना सूक्ष्म विचार ।।
कुल कुण्डलिनी कुण्डली शिवके । साधं त्रिवलयाकार ।।
विद्युल्लेखा विसतन्तु सम । सुप्त भुजङ्गी प्रकार ।।
दिव्य त्रिकोणे कोटि तड़ित् शशि । आभा भानु हजार ।।
मूल मही बं शं षं सं मां । गणपति मूलाधार ।।
बं भं मं यं रं लं ब्रह्मा । स्वाधिष्ठान विचार ।।
रं मणिपूरे विष्णु माया । अग्नि स्वरूपाकार ।।
डं ढं णं तं थं दं धं नं । पं फं दल विस्तार ।।
कं खं गं घं ङं चं छं जं । झं ञं टं ठं स्फार ।।
द्वादस दल शिव शक्ति विराजे । अनहत नाद अपार ।।
चित्त गगन में चिति शक्ति का । स्पन्दन बारम्बार ।।
हंस सोऽहं मन्त्र स्वरूपी । विद्या मय झङ्कार ।।
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं । षोडश पत्राकार ।।

लं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः । व्योम विशुद्धि विचार॥
हं क्षं हसौः सकलं तूँ साधे । विविध सिद्धि के द्वार ॥
मन्त्र यन्त्र सब तन्त्र तुम्ही हो । आगम निगम विचार॥
अर्धमात्र रही अन्तर आत्मा । सकल तत्त्व संसार ॥
शुभ ज्योतिर्मय हंस युगल रत । पङ्कज पत्र हजार ॥
गुप्ताक्षर मञ्जुल मणिमण्डप । श्रीगुरु श्वेत शृंगार॥
परमात्मा गुरुनाथ परम शिव अभय वरद सन्धार ॥
रक्त शुक्ल प्रभासित सुषमा । महिमा अपरम्पार ॥
शिव वामाङ्के शक्ति विराजे । रक्त बिन्दु बौछार॥
शिव शक्ति पद पङ्कज बरषे । स्नेह सुधा की धार ॥
अभिषेके षट् चक्र विकासे । शिवमय जय जय कार ॥
अन्तर् मुख आनन्द अश्रुभर । पुलकित करुण पुकार ॥
दत्तात्रेया नन्दनाथ का । नमो नमो शत बार ॥
जागे जगदाधार मैया । साधो मन के तार ॥

श्रीविद्या साधना पीठ, वाराणसी

श्रीविद्या साधना पीठ, वाराणसी, श्रीविद्या मन्त्रयोग द्वारा भगवती पराम्बा ललितामहात्रिपुरसुन्दरी की उपासना तथा श्रीविद्या परम्परा के संरक्षण, संवर्धन एवं प्रसार के लिये संस्थापित की गयी है। भारतवर्ष में अपने प्रकार की अद्वितीय यह संस्था स्वामी करपात्री जी महाराज के द्वारा उत्तर भारत में पुनरूज्जीवित की गयी इस परम्परा को अग्रसर करने के लिये प्रतिश्रुत है।

संस्था का भवन

वाराणसी में नगवा क्षेत्र में गंगाजी के सुरम्य तट के निकट ही अत्यन्त प्रशस्त और शान्त स्थल में नवनिर्मित चार मंजिल के भवन में यह आश्रम प्रतिष्ठित है। इसमें दो विशाल सभाकक्ष एवं तेरह कक्ष हैं, जिनमें यज्ञमण्डप, अर्चनकक्ष, ग्रन्थालय, शिक्षा एवं अनुसन्धान प्रकाशन विभाग एवम् अतिथि कक्ष आदि स्थित हैं। भवन की विशाल छत पर साधक सन्ध्योपासन, जप आदि कर सकते हैं। यहाँ से सामने भगवती गङ्गा और काशी के देवालयों एवं घाटों का दर्शन होता रहता है। भवन के आस-पास सुरम्य उद्यान एवं विद्यालय जैसी संस्थाएँ जिनसे अनुकूल वातावरण का निर्माण होता है।

श्रीविद्या साधना पीठ के अङ्ग विभाग एवम् गतिविधियाँ

पाँच अङ्गों या साधना पीठ की परिकल्पना विभागों के रूप में की गयी है। यह अङ्ग या विभाग निम्नलिखित हैं—

१. उपासना विभाग,

२. अनुसन्धान एवं शिक्षण विभाग (अध्यापन एवं छात्रावास सहित),

३. प्रकाशन विभाग,

४. ग्रन्थालय,

५. साधकावास एवम् अतिथिकक्ष।

साधना पीठ में निगमागम शास्त्रों द्वारा विहित उपासना यथाविधि नियमित रूप से सम्पन्न होती है। दीक्षित साधक-साधिकायें पारम्परिक आचार्य के निर्देशन में यह साधना सम्पन्न कर रहे हैं।

शिक्षण विभाग में छात्रों को सुयोग्य विद्वानों द्वारा शास्त्र का अध्ययन कराया जाता है और उन्हें आगमों का सामान्य रूप से तथा श्रीविद्या का विशेष रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है।

प्रकाशन विभाग द्वारा श्रीविद्या के अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया गया है, जिनमें श्रीविद्यारत्नाकर, श्रीविद्यावरिवस्या, भुवनेश्वरीवरिवस्या एवं गणपतिवरिवस्या प्रमुख हैं। कई आगम शास्त्र के दार्शिक ग्रन्थों का भी हिन्दी अनुवाद किया है जो सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ।

साधनापीठ में आगम के ग्रन्थों का एक पुस्तकालय भी स्थापित किया गया जो निरन्तर बढ़ रहा है। आशा है, आगामी वर्षों में इसमें आगम पर देश और विदेशों में प्रकाशित विपुल

सामग्री उपलब्ध करा दी जायगी तथा आगम-तन्त्र की पाण्डुलिपियों का सङ्ग्रह आरम्भ कर एक पाण्डुलिपि सङ्ग्रहालय स्थापित कर अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन भी आरम्भ किया जायेगा।

साधना पीठ एवं अथितिगृह में देश-विदेश के साधक-साधिका एवं आगन्तुक अतिथियों के आवश्यकतानुसार रहने की भी व्यवस्था है। इस प्रकार साधनापीठ जो कि एक विधिवत् पंजीकृत संस्था है, सक्रिय है और महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है।

उपर्युक्त नियमित कार्यक्रमों के अतिरिक्त साधनापीठ में नियमित रूप से श्रीललिता सहस्रार्चन एवं लक्षार्चन सम्पन्न होता रहता है। प्रतिदिन महागणपति यन्त्र की अर्चना होती है एवं पर्वों पर सहस्रमोदकार्चन सम्पन्न होता है। साधनापीठ ने काशी, प्रयाग, बम्बई, कामाख्या, विन्ध्याचल तथा पुनः काशी में विगत सात-आठ वर्षों में श्रीललिता कोट्यर्चन सम्पन्न किया है।

भावी कार्यक्रम

शिक्षण—साधना पीठ में इस समय १० छात्र भोजन एवं आवास की सुविधा के साथ निःशुल्क शिक्षण एवं साधना का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

आगामी वर्ष में यह छात्रसंख्या दूनी कर उपर्युक्त सुविधाओं के साथ ही नियमित छात्रवृत्ति एवं छात्रों की शिक्षा पूरी होने पर उनके नाम जमा की गयी एक निश्चित धनराशि देने का भी प्रावधान किया जायगा, ताकि शिक्षा की समाप्ति होने पर उन्हें

भावी जीवन आरम्भ करने के लिये कुछ आवश्यक वित्तीय साहाय्य उपलब्ध हो सके।

अनुसन्धान एवं प्रकाशन—साधना पीठ अपने अनुसन्धान एवं प्रकाशन के कार्यक्रम का विस्तार करेगा और श्रीविद्या के विभिन्न क्षेत्रों में तथा सामान्यत: आगमों पर व्यवस्थित रूप से अनुसन्धान कार्य किया जा सकेगा ताकि श्रीविद्या के रहस्य को प्रमाणिक रूप और शास्त्रविहित मर्य्यादा में प्रकाशित किया जा सके।

साधना—साधना के क्षेत्र में भी देश और विदेश के जिज्ञासु साधकों को समुचित निर्देश और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये आवश्यक तन्त्र का विस्तार किया जायगा। सौभाग्य से श्रीविद्यासाधना पीठ में आचार्य दत्तात्रेयानन्दनाथजी महाराज का सतत अनुग्रह और मार्गदर्शन उपलब्ध है। जन सामान्य इससे अधिकाधिक लाभान्वित हो—साधना पीठ ऐसी व्यवस्था बढ़ायेगा।

संस्था की वर्तमान संरचना

श्रीविद्या साधना पीठ, वाराणसी विधिवत्, पंजीकृत न्यास के द्वारा संचालित संस्था है, जिसका नियमानुसार आय-व्यय रखकर संचालन एक विधिवत् गठित न्यासी मण्डल द्वारा किया जाता है।

प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी
सचिव
श्रीविद्या साधना पीठ, वाराणसी


चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः